https://www.developindiagroup.co.in/

यू.पी.एस.सी

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा अध्ययन सामाग्री

सामान्य अध्ययन

प्रश्नपत्र – 2

(भारतीय विरासत और संस्कृति, विश्व का इतिहास एवं भूगोल और समाज)

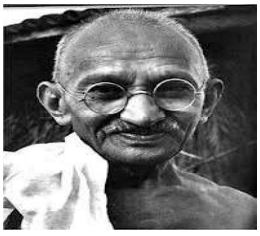

Published By
Develop India Group

अनुक्रमणिका

प्रश्नपत्र – 2 (भारतीय विरासत और संस्कृति, विश्व का इतिहास एवं भूगोल और समाज) 1
भारतीय संस्कृति में प्रचीनकाल से आधुनिक काल तक के कला रूप, साहित्य और वास्तुकला 7
स्थापत्य कला 7
चित्रकला 7
मूर्तिकला 7
स्थापत्य कला 7
सैंधव स्थापत्य कला 7
वैदिक स्थापत्य कला 7
मौर्यकालीन स्थापत्य कला 7
मौर्योत्तर कालीन स्थापत्य कला 7
गुप्तकालीन स्थापत्य कला 8
सल्तनत कालीन स्थापत्य कला 8
गुप्तोत्तर कालीन स्थापत्य कला/मंदिर स्थापत्य कला 8
स्थापत्य कला की प्रांतीय शैलियां 9
मूर्तिकला 9
सैंधव कालीन मूर्तिकला 9
मौर्य युगीन मूर्तिकला 9
शुंगयुगीन मूर्तिकला 9
गुप्त कालीन मूर्तिकला 9
चालुक्य कालीन मूर्तिकला 9
राष्ट्रकूट कालीन मूर्तिकला 9
प्रतिहार कालीन मूर्तिकला 10
कुषाण कालीन मूर्तिकला 10
चोल कालीन मूर्तिकला 10
चित्रकला 10
भारतीय चित्रकला की प्रमुख शैलियां 10
भारतीय नृत्य शैलियां 12
भरतनाट्यम 12
कथकली 12
कथक 12
ओडिसी 13
मणिपुरी 13
मोहिनीअट्टम 13
कुचीपुडी 14
कुटियाट्टम 15
यक्षगान 16
तेरुक्कूट 16
गंधर्वगान 16
चाक्यारकुत्तु 16
कूडियाट्टम 16
ओट्टन तुल्लल 16
ललिता 16
बोमल अट्टम 16
बश्सल अट्टम 16
इल्लकी अट्टम 16
चोली अट्टम 16
भागवत मेला नृत्य 16
आधुनिक भारत में शिक्षा का विकास 17
स्वतंत्रता संग्राम और इसके विभिन्न चरण 40
अंतरिम सरकार का गठन 70
संविधान सभा की बैठक (9 दिसम्बर, 1946) 71
रॉयल नौसेना विद्रोह (फरवरी 1946) 71
आजाद हिंद फौज 71
आजाद हिंद फौज पर मुकदमा (लाल किला मुकदमा), 1945 72
भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति 72
माउंटबेटेन योजना 73
भारत स्वतंत्रता अधिनियम (1947) 73
आधुनिक भारत के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व 74
महात्मा गांधी 74
बाल गंगाधर तिलक 75
राजाराम मोहन राय 75

Develop India Group

जवाहर लाल नेहरू	76	तेज बहादुर सप्रू	84
रवींद्रनाथ टैगोर	77	सरोजनी नायडू	84
सर सैय्यद अहमद खां	78	गोपालकृष्ण गोखले	84
स्वामी विवेकानंद	78	व्योमेश चंद्र बनर्जी	84
स्वामी दयानंद सरस्वती	79	फिरोजशाह मेहता	84
डॉ. भीमराव अम्बेडकर	79	बिपिन चंद्र पाल	84
अबुल कलाम आजाद	80	लाला लाजपत राय	84
मुहम्मद इकबाल	80	राजाराम मोहन राय	85
अजीमुल्ला खां	80	रास बिहारी बोस	85
सी. राजगोपालचारी	80	भगत सिंह	85
अब्दुल गफ्फार खां	80	भीका जी कामा	85
डॉ.ए.एम. अंसारी	81	लाला हरदयाल	85
अरविंद घोष	81	चापेकर बंधु	85
मदनलाल धींगरा	81	सैफुद्दीन किचलू	85
मैक्समूलर	81	पट्टाभि सीतारमैय्या	85
मदन मोहन मालवीय	81	आचार्य नरेंद्र देव	86
महादेव गोविंद रानाडे	81	वल्लभभाई पटेल	86
विष्णु शास्त्री चिपलुंकर	81	राजकुमारी अमृतकौर	86
एनी बेसेंट	81	सच्चिदानंद सिन्हा	86
हेनरी विवियन डेरेजियो	81	लॉर्ड माउंटबेटन	86
भाई महाराज सिंह	82	ठक्कर बापा	86
सर सैय्यद अहमद खां	82	कांजीरम नटराजन अन्नादुरई	86
तांत्या टोपे	82	श्रीनिवास शास्त्री	86
रानी लक्ष्मी बाई	82	के.टी. तैलंग	86
दादा भाई नौरोजी	82	लतिका घोष	87
सुरेंद्रनाथ बनर्जी	82	रमेश चंद्र दत्त	87
बाल गंगाधर तिलक	82	चन्द्रशेखर आजाद	87
ज्योतिबा फुले	82	विनायक दामोदर सावरकर	87
ईश्वर चंद्र विद्यासागर	83	रामप्रसाद बिस्मिल	87
केशव चंद्र सेन	83	गोपबंधु दास	87
पण्डित रमाबाई	83	नीलकंठ दास	87
सिस्टर निवेदिता	83	जमनालाल बजाज	87
धोंडो केशव कर्वे	83	टी. प्रकाशम	87
मानवेंद्र नाथ राय	83	एस. श्रीनिवास अयंगर	88
देवेंद्र नाथ टैगोर	83	चंपक रमन पिल्लई	88
कुंवर सिंह	84	के. केलप्पण	88
मंगल पाण्डे	84	अल्लादी सीताराम राजू	88
सर विलियम जोंस	84	सूर्यसेन	88

Develop India Group

पं. जवाहरलाल नेहरू	88	औद्योगिक क्रांति का विश्व स्तर का प्रभाव	92
गणेश वसुदेव मावलंकर	88	अन्य देशों में औद्योगीकरण : अमेरिका, जर्मनी, रूस तथा	
डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा	88	जापान	92
राजकिशोर शुक्ल	88	अमेरिका में औद्योगीकरण	93
जयप्रकाश नारायण	88	जर्मनी में औद्योगीकरण	94
नारायण गुरु	88	रूस में औद्योगीकरण	95
राममनोहर लोहिया	89	जापान में औद्योगीकीकरण	95
आचार्य बिनोवा भावे	89	विश्वयुद्ध	96
विट्ठल भाई पटेल	89	प्रथम विश्व युद्ध के कारण और परिणाम	98
श्यामा प्रसाद मुखर्जी	89	प्रथम विश्व युद्ध घटनाक्रम	100
खुदीराम बोस	89	वुडरो विल्सन की 14 सूत्री मांगे	100
गणेश शंकर विद्यार्थी	89	वर्साय की संधि (28 जून 1919) : मित्र राष्ट्र तथा जर्मन के बीच	102
सी.वाई. चिंतामणि	89	सेंट जर्मन की संधि (10 दिसम्बर, 1919)	103
सी.एफ. एंड्रूज	89	नुइली की संधि 27 नवम्बर, 1919	103
अच्युत एस. पटवर्धन	89	त्रिआनों की संधि 4 जून, 1020 ई.	103
अजीत सिंह	89	सेब्रे की संधि 10 अगस्त 1920 – तुर्की	104
आनंद मोहन बोस	90	प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव	104
अमीरचंद	90	द्वितीय विश्व युद्ध : कारण एवं परिणाम	105
अरुणा आसफ अली	90	द्वितीय विश्वयुद्ध की गतिविधियां	107
इंदु लाल याज्ञनिक	90	द्वितीय महायुद्ध के परिणाम एवं प्रभाव	108
कैलाशनाथ काटजू	90	द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का विश्व : राष्ट्रीय सीमाओं का पुनः	
कस्तूरबा गांधी	90	सीमांकन	110
कल्पना दत्त	90	पश्चिमी यूरोप का एकीकरण तथा अमेरिकी रणनीति	110
जतीन्द्रनाथ दास	90	तृतीय विश्व एवं गुट निरपेक्षता का आर्विभाव	114
दुर्गाभाई देशमुख	90	गुट निरपेक्ष आंदोलन का मूल्यांकन, परीक्षण तथा आलोचना	115
नलिनी गुप्ता	90	संयुक्त राष्ट्र संघ की विशिष्टता	117
नारायण मल्हार राव जोशी	90	यूरोप का एकीकरण	124
मतांगनि हजारा	91	नाटो की गतिविधियां	124
माधव	91	यूरोपीय आर्थिक समुदाय के कार्यकारी निकाय	126
तुलसीदास	91	उपनिवेशवाद	128
सूरदास	91	दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व एशिया	128
बल्लभाचार्य	91	इंडोनेशिया में स्वतंत्रता आंदोलन	129
ज्ञानदेव	91	हिंदचीन	131
लोकाचार्य	91	हिंद–चीन राष्ट्रीयता का उदय	131
गुरु गोविंद सिंह	91	लातीनी अमेरिका एवं दक्षिण अफ्रीका	136
स्वतंत्रता के पष्चात देष के अंदर एकीकरण और पुनर्गठन	91	दक्षिण अफ्रीका	137
विष्व के इतिहास में 18वीं सदी की घटनाएं	92	आस्ट्रेलिया	138

Develop India Group

साम्राज्यवाद तथा मुक्त व्यापार : नव साम्राज्यवाद	140	परदा प्रथा	153
साम्राज्यवाद तथा उप–निवेशवाद में अंतर	140	देवदासियाँ	154
मुक्त व्यापार	140	अंग्रेजी शासन	154
साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद	141	स्वतंत्र भारत में महिलाएं	155
सांस्कृतिक कारक	141	महिलाएं और विकास : स्व–सहायता समूह आंदोलन	156
ऐतिहासिक कारक	141	जनसंख्या एवं सम्बद्ध मुद्दे	156
राजनीतिक कारक	141	समावेशी विकास	159
आर्थिक कारक	142	वित्तीय समावेशन	160
पश्चिमी पूंजीवादी देशों की भूमिका	142	शहरीकरण, उनकी समस्याएं और रक्षोपाय	161
राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचोव की भूमिका	142	भारतीय समाज पर भूमंडलीकरण का प्रभाव	163
पूर्वी यूरोप में राजनीतिक परिवर्तन (1989–1992 ई.)	144	सामाजिक सशक्तीकरण, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद और धर्मनिरपेक्षता	163
पोलैण्ड	145	सामाजिक सशक्तीकरण	163
रोमानिया	145	सम्प्रदायवाद	163
चेकोस्लोवाकिया	146	क्षेत्रवाद	166
हंगरी	146	धर्मनिरपेक्षता	167
अल्बानिया	146	विश्व के भौतिक भूगोल की मुख्य विशेषताएं	167
बुल्गारिया	147	दबाव अथवा संपीडन से उत्पन्न वलित स्थलाकृतियां	170
शीत युद्ध का अंत एवं अकेली महा शक्ति के रूप में अमेरिका		भूपटल की उत्पत्ति तथा विकास	172
का उत्कर्ष	147	पृथ्वी की आंतरिक बनावट	173
राजनीतिक प्रभुत्व	147	तरंगे	174
आर्थिक प्रभुत्व	148	प्रावार / मैण्टल	176
सांस्कृतिक प्रभुत्व	148	पृथ्वी के सतह से गहराई में तापमान का सामान्य आकलन	178
सैन्य प्रभुत्व	148	प्लेट विवर्तनिकी की अवधारणा	178
भारतीय समाज की मुख्य विशेषताएं एवं भारत की विविधता	148	प्लेट का वर्गीकरण	179
भारतीय समाज की मुख्य विशेषताए	149	प्लेट गति एवं विवर्तनिक क्रियायें	179
भारत की विविधता	150	प्लेट की गति	180
भौगोलिक विविधता	150	ज्वालामुखी क्रिया	184
राजनीतिक विविधता	151	विश्व का तापमान एवं वायुदाब पेटियां	185
सांस्कृतिक विविधता	151	वायुमंडल के गर्म और ठण्डा होने की प्रक्रिया	185
धार्मिक विविधता	151	विश्व में तापमान का वितरण	187
भाषायी विविधता	151	ताप–असंगति	191
आर्थिक विविधता	151	वायुदाब पेटियाँ	192
महिलाओं की भूमिका और महिला संगठन	151	भूमण्डलीय एवं स्थानीय पवन	195
प्राचीन भारत महिलाओं की स्थिति	152	नगरीय द्वीप उष्मण प्रभाव	199
मध्ययुगीन काल में महिलाओं की स्थिति	152	वायुराशियाँ	199
ऐतिहासिक प्रथाएं	153	महासागरों की तलीय स्थलाकृति	202
सती प्रथा	153	महासागरीय गर्त	206
जौहर प्रथा	153	समुद्री निक्षेप एवं समुद्री प्रदूषण	208

Develop India Group

समुद्री धाराएं	214
पृथ्वी के स्वाभाव से संबंधित कारक	215
समुद्र संबंधी कारक	216
हिन्द महासागर की धाराएँ	220
प्रशान्त महासागर की धाराएँ	221
धाराओं का प्रभाव	223
ज्वार भाटा	224
विश्वभर के प्राकृतिक संसाधनों का वितरण	231
महत्त्वपूर्ण भू–भौतिकीय घटनाएं	232
भूकंप	232
भूकंप के कारण	232
भूकंप के प्रभाव	233
सुनामी	234
भूकम्प जनित सुनामी	235
ज्वालामुखीय हलचल	236
चक्रवात	237
चक्रवात	240
जीवोम के प्रकार	249
वन संरक्षण एवं विस्तार सुझाव	256

●●●

Develop India Group

भारतीय विरासत और संस्कृति, विश्व का इतिहास एवं भूगोल और समाज

भारतीय संस्कृति में प्रचीनकाल से आधुनिक काल तक के कला रूप, साहित्य और वास्तुकला

भारतीय कला को सामान्यतः तीन रूपों में विभाजित किया जाता है :

1. स्थापत्य कला
2. चित्रकला
3. मूर्तिकला

स्थापत्य कला

स्थापत्य कला का सम्बंध विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों के निर्माण से है। भारतीय स्थापत्य कला विश्व की सर्वश्रेष्ठ स्थापत्य कलाओं में से एक है। इस कला की प्रमुख शैलियां इस प्रकार हैं :

सैंधव स्थापत्य कला

सैंधव स्थापत्य कला के प्रमुख निर्माण हैं – हड़प्पा के बृहत स्नानागार एवं मोहनजोदड़ो के दुर्ग व अन्नागार। विशिष्ट नगर नियोजन व विकसित जलनिकासी व्यवस्था की दृष्टि से यह स्थापत्य कला महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस सभ्यता में कहीं कहीं अलंकृत ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य भी मिलते हैं।

वैदिक स्थापत्य कला

वैदिक स्थापत्य कला में ग्रामीण परिवेश अर्थात मिट्टी, लकड़ी, छप्पर इत्यादि से बनें घरों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। साथ ही पत्थरों से निर्मित उत्कृष्ट भवनों के साक्ष्य भी मिले हैं।

मौर्यकालीन स्थापत्य कला

मौर्यकालीन स्थापत्य कला के आरंभिक साक्ष्यों के अनुसार भवन लकड़ी से निर्मित होते थे, लेकिन अशोक के समय में भवनों के निर्माण में पत्थरों का प्रयोग आरम्भ हुआ। मौर्यकाल की सर्वोत्कृष्ट स्थापत्य 'एकाश्मक स्तम्भ' है जिसे पत्थरों को तराशकर बनाया गया था।

मौर्योत्तर कालीन स्थापत्य कला

मौर्यकाल के उलट इस काल में धार्मिक उद्देश्यों हेतु भवनों का निर्माण किया जाने लगा था, जिनमें चैत्य, स्तूप, विहार, तथा गुफाएं प्रमुख थीं। ये सभी गुफा कक्ष, मूर्तिकला एवं स्तम्भों द्वारा सुसज्जित थे।

चैत्य : ये चिकने स्तम्भों तथा सातवाहन (छतों) द्वारा निर्मित पूजा गृह थे। प्रमुख चैत्यों में कार्ले (सर्वोत्कृष्ट), अजंता एवं भाजा प्रमुख हैं।

स्तूप : ईंट पत्थरों से निर्मित विशाल स्तूपों का निर्माण बौद्ध संतों के देहावशेषों तथा उनसे जुड़ी वस्तुओं को संरक्षित करने के लिए किया जाता था। प्रमुख स्तूप हैं – सांची, भरहुत, अमरावती एवं सारनाथ।

विहार : ये बौद्धों के निजी आश्रय स्थल थे, जहां बौद्ध शिक्षा दी जाती थी। नालंदा विहार इसका विशिष्ट उदाहरण है।

गुफाएं : पत्थरों को काटकर बनाई गई गुफाएं मुख्यतः बौद्ध धर्म से सम्बंधित थीं। इनका सम्बंध बौद्ध धर्म के साथ–साथ

Develop India Group

हिंदू व जैन धर्मों से भी था। महाराष्ट्र के औरंगाबाद में निर्मित अजंता, एलोरा तथा मध्य प्रदेश में निर्मित बाघ की गुफाएं मूर्तिकला व चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ये सभी गुफाएं बौद्ध धर्म की जातक कथाओं पर आधारित हैं।

गुप्तकालीन स्थापत्य कला

गुप्तकाल में ऊंचे चबूतरे पर गर्भगृह युक्त मंदिरों का निर्माण शुरू हुआ। इन मंदिरों के द्वार सुंदर मूर्तियों से सुसज्जित होते थे तथा मंदिरों का भीतरी भाग सादा होता था। गुप्तकालीन सर्वोत्कृष्ट मंदिर दशावतार है जिसमें पहली बार शिखर का प्रयोग किया गया था। इन मंदिरों का निर्माण इंडो–आर्यन शैली में किया गया था। सारनाथ स्थित धम्मेख स्तूप का निर्माण इसी काल में हुआ था।

सल्तनत कालीन स्थापत्य कला

इस काल में हिंदू–मुस्लिम शैली का विकास हुआ। सल्तनत कालीन स्थापत्य मुख्यतः तुर्की शैली, खिलजी शैली, तुगलक शैली, एवं लोदी शैली प्रमुख हैं।

तुर्की शैली : इस शैली के स्थापत्यों का निर्माण मुख्यतः चूने व गारे से निर्मित प्लास्टर से किया जाता था। तुर्की शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – कुतुबमीनार, कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद, अढ़ाई दिन का मकबरा।

खिलजी शैली : इस शैली के प्रमुख स्थापत्यों का निर्माण लाल पत्थरों से किया गया। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – अलाई दरवाजा, जमायत खाना मस्जिद।

तुगलक शैली : इस शैली के स्थापत्य की अनुकृति मिस्र के पिरामिडों से मिलती जुलती है। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – गयासुद्दीन बलवन का मकबरा, जहांपनाह नगर।

लोदी शैली : इस शैली में निर्मित स्थापत्यों में बगीचों से युक्त अष्टभुजी इमारतों का निर्माण कराया गया था। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – बहलोल लोदी की कब्र, मोती मस्जिद। बहलोल लोदी के काल में मकबरों का सर्वाधिक निर्माण किया गया, जिस कारण इस काल को *'मकबरों का युग'* भी कहा जाता है।

गुप्तोत्तर कालीन स्थापत्य कला/मंदिर स्थापत्य कला

उत्तर गुप्त काल में उत्तर भारत में नागर शैली, मध्य भारत में वेसर शैली तथा दक्षिण भारत में द्रविड़ शैली का विकास हुआ।

नागर शैली : इस शैली के मंदिरों की प्रमुख विशेषताओं में सलीबनुमा आधारभूमि पर तिरछी, टेढ़ी आकृति, गर्भगृह तथा मण्डपों का निर्माण शामिल हैं। इस शैली के प्रमुख मंदिर हैं – उड़ीसा में गंग राजाओं द्वारा निर्मित लिंगराज मंदिर, जगन्नाथ मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर तथा मध्य प्रदेश में खजुराहो व कंदरिया महादेव मंदिर और राजस्थान में दिलवाड़ा स्थित जैन मंदिर उल्लेखनीय हैं।

वेसर शैली : इस शैली के मंदिर खम्भेदार व ठोस दीवारों से बनें होते थे, जिनमें पत्थरों से बनीं खिड़कियां लगी होती थीं। वेसर शैली के अधिकांश मंदिरों का निर्माण विशाल चट्टानों को काटकर बनाया जाता था। इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं – एलिफेंटा व एलोरा की गुफाएं तथा एहोल मंदिर।

द्रविड़ शैली : इस शैली के प्रमुख मंदिरों का निर्माण चट्टानों को काटकर रथ मंदिरों के रूप में किया गया था। इस शैली के मंदिरों के संरक्षक पल्लव राजा थे। द्रविड़ शैली के मंदिरों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण महाबलीपुरम् अर्थात मामल्लपुरम् व कांचीपुरम के मंदिर हैं। इस शैली के मंदिरों का निर्माण पल्लव शासकों के अलावा चोल व होयसल राजाओं द्वारा भी किया गया था।

Develop India Group

स्थापत्य कला की प्रांतीय शैलियां

शर्की शैली (जौनपुर शैली) : इस शैली के स्थापत्यों के गुम्बद द्वार तथ मुख्य कक्ष इस्लामी शैली में तथा अंदर के स्तम्भ तथा दीर्घा का निर्माण हिंदू शैली में किया गया। इस शैली की प्रमुख इमारत है – अटाला मस्जिद।

गुजरात शैली : इस शैली में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ही शैलियों का मिश्रित प्रयोग किया गया। इस शैली की प्रमुख विशेषता थी – पतली मीनार पर उत्कृष्ट नक्काशी तथा अलंकृत कोष्ठक।

बंगाल शैली : यह एक मिश्रित शैली है जिसमें ईंटों का अधिकाधिक प्रयोग नुकीली मेहराब बनाने में किया गया। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – बड़ा सोना मस्जिद, छोटा सोना मस्ज्दि तथा अदीना मस्जिद।

मालवा शैली : हिंदू शैली से निर्मित मालवा शैली की प्रमुख इमारतों में चूना पत्थर तथा संगमरमर का व्यापक प्रयोग किया गया। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – हिंडोला महल, जहाज महल, जामा मस्जिद।

दक्कन शैली : इस शैली में द्रविड़ शैली एवं चालुक्य शैली का प्रभाव बिल्कुल भी दिखाई नहीं देता है। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य है – चार मीनार, जिसका गुम्बद अर्द्धवृत्ताकार रूप में बनाया गया है।

कश्मीरी शैली : इस शैली में हिंदू व मुस्लिम दोनों ही शैलियों का मिश्रित प्रयोग हुआ है। इस शैली के प्रमुख स्थापत्य हैं – जैना–लंका महल, जामा मस्जिद।

मूर्तिकला

मूर्तिकला की दृष्टि से भारतीय मूर्तिकला के इतिहास को सैंधव कालीन, मौर्य युगीन, शुंगयुगीन, गुप्त कालीन, चालुक्य, राष्ट्रकूट व प्रतिहार तथा शक–कुषाण कालीन मूर्तिकलाओं के रूप में विभाजित किया जाता है।

सैंधव कालीन मूर्तिकला

सैंधव सभ्यता से प्राप्त प्रस्तर योगी की मूर्ति कलात्मक दृष्टि से विशिष्ट हैं। धातु निर्मित मूर्तियों में नर्तकी की कांस्य मूर्ति अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के कारण अत्यधिक जीवंत प्रतीत होती है। इनमें नारी मूर्तियों की बहुलता है। सैंधव मुहरों पर उत्कीर्ण संयुक्त पशु आकृतियां मूर्तिकला की अमूल्य धरोहर हैं।

मौर्य युगीन मूर्तिकला

मौर्य युगीन मूर्तिकला सौंदर्यीय आकर्षण की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इस काल की मूर्तिकलाओं पर यूनानी प्रभाव भी झलकता है। अशोक कालीन मर्तिकला का चरमोत्कर्ष स्तंभों के रूप में दिखता है।

शुंगयुगीन मूर्तिकला

शुंग काल की मृण्मयी मूर्तियां अपनी गतिमानता और सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध हैं।

गुप्त कालीन मूर्तिकला

इस काल की मूर्तिकला अपनी मौलिकता, अंग सौंदर्य व सजीवता की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। हिंदू मिथकों पर आधारित मूर्तियां गुप्त काल में ही बनाई गईं थीं।

चालुक्य कालीन मूर्तिकला

इस काल की मूर्तिकला में शिव की नाचती हुई प्रतिमा सर्वेत्कृष्ट मानी गई है।

राष्ट्रकूट कालीन मूर्तिकला

इस काल की मूर्तिकला में मुख्यतः धार्मिक मूर्तियों का निर्माण किया गया। अधिकांश मूर्तियां पहाड़ों को काटकर बनाए गए

Develop India Group

रथ मंदिरों में उत्कीर्ण हैं।

प्रतिहार कालीन मूर्तिकला

इस काल की सर्वोत्कृष्ट मूर्ति वन देवी की मूर्ति है।

कुषाण कालीन मूर्तिकला

कुषाण कालीन मूर्तिकलाओं को मथुरा शैली, अमरावती शैली एवं गांधार शैली में विभाजित किया जाता है। मथुरा शैली की मूर्तियां आध्यात्मिकता एवं भावना प्रधान हैं। गांधार शैली की मूर्तियों में बुद्ध की मूर्तियां सिंहासनासीन हैं। अमरावती की कला में पशुओं एवं पुष्पों का अभूतपूर्व प्रयोग हुआ है।

चोल कालीन मूर्तिकला

इस काल की मूर्तिकला में नटराज की कांस्य की प्रतिमा सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

चित्रकला

भारत में चित्रकला का इतिहास बहुत पुराना रहा है। पाषाण काल में ही मानव ने गुफा चित्रण करना शुरू कर दिया था। होशंगाबाद और भीमबेटका जैसे क्षेत्रों में कंदराओं और गुफाओं में मानव चित्रण के प्रमाण मिले हैं। इन चित्रों में शिकार, शिकार करते मानव समूहों, स्त्रियों तथा पशु–पक्षियों आदि के चित्र मिले हैं। अजंता की गुफाओं में की गई चित्रकारी कई शताब्दियों में तैयार हुई थी, इसकी सबसे प्राचीन चित्रकारी ई.पू. प्रथम शताब्दी की हैं। इन चित्रों में भगवान बुद्ध को विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है।

भारतीय चित्रकला की प्रमुख शैलियां

जैन शैली : सातवीं से 12वीं शताब्दी तक पूरे भारत में इस शैली का प्रमुख स्थान था। इस शैली का प्रथम प्रमाण सित्तन्वासल की गुफा में बनी 5 जैन मूर्तियों से प्राप्त होता है। यह जैन मूर्तियां 7वीं शताब्दी के पल्लव नरेश महेन्द्र वर्मन के शासन काल में बनी थीं ।

पाल शैली : यह एक प्रमुख भारतीय चित्रकला शैली हैं। 9वीं से 12वीं शताब्दी तक बंगाल में पाल वंश के शासकों धर्मपाल और देवपाल के शासक काल में विशेषरूप से विकसित होने वाली चित्रकला पाल शैली थी। पाल शैली की विषयवस्तु बौद्ध धर्म से प्रभावित रही है।

अपभ्रंश शैली : यह एक प्रमुख भारतीय चित्रकला शैली हैं। यह पश्चिम भारत में विकसित हुए लघु चित्रों की चित्रकला शैली थी, जो 11वीं से 15वीं शताब्दी के बीच प्रारम्भ में ताड़ पत्रों पर और बाद में कागज पर चित्रित हुई।

मुगल शैली : यह मुगलकाल की प्रमुख भारतीय चित्रकला शैली है।

पटना या कम्पनी शैली : तत्कालीन जनसामान्य के आम पहलुओं के चित्रण के लिए प्रसिद्ध पटना या कम्पनी चित्रकला शैली का विकास मुगल साम्राज्य के पतन के बाद हुआ, जब चित्रकारों ने पटना तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों को अपनी चित्रकला का विषय बनाया। इन चित्रकारों द्वारा चित्र बनाकर ब्रिटेन भी भेजे गए जो आज भी वहां के संग्रहालयों में विद्यमान हैं।

दक्कन शैली : इस शैली का प्रधान केन्द्र बीजापुर था, किन्तु इसका विस्तार गोलकुण्डा तथा अहमदनगर राज्यों में भी था। रागमाला के चित्रों का चित्रांकन इस शैली में विशेषरूप से किया गया। इस शैली के महान संरक्षकों में बीजापुर के अली आदिल शाह तथा उसके उत्तराधिकारी इब्राहिम शाह थे।

गुजरात शैली : यह गुजरात क्षेत्र की प्रमुख शैली है।

Develop India Group

राजपूत शैली : मुगल काल के अंतिम दिनों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक राजपूत राज्यों की उत्पत्ति हुई, जिनमें मेवाड़, बूंदी, मालवा आदि मुख्य थे। इन राज्यों में विशिष्ट प्रकार की चित्रकला शैली का विकास हुआ। इन विभिन्न शैलियों में की विशेषताओं के कारण उन्हे राजपूत शैली का नाम प्रदान किया गया।

मधुबनी चित्रकला : मधुबनी चित्रकला मिथिलांचल क्षेत्र जैसे बिहार के दरभंगा, मधुबनी एवं नेपाल के कुछ क्षेत्रों की प्रमुख चित्रकला है। प्रारंभ में रंगोली के रूप में रहने के बाद यह कला धीरे–धीरे आधुनिक रूप में कपड़ों, दीवारों एवं कागज पर उतरी गई। मिथिला की औरतों द्वारा शुरू की गई इस घरेलू चित्रकला को बाद में पुरुषों ने भी अपना लिया। इस शैली में खासतौर पर हिन्दू देवी–देवताओं की तस्वीर, प्राकृतिक नजारे जैसे – सूर्य व चंद्रमा, धार्मिक पेड़–पौधे जैसे, तुलसी और विवाह के दृश्य देखने को मिलते हैं। मधुबनी पेंटिंग दो तरह की होती हैं – भित्ति चित्र और अरिपन या अल्पना।

इस शैली की चित्रकला को तीन भागों में विभाजित किया जाता है :

अल्पना : यह बंगाल में प्राकृतिक रंगों से विभिन्न अवसरों पर भूमि पर बनाई जाती है।

रंगोली : यह महाराष्ट्र में शुभ अवसरों पर विभिन्न ज्यामितीय व रेखीय आकृतियों में द्वार की चौखट पर बनाई जाती है।

कलमकारी : यह चित्रकारी दक्षिण भारत में शुभ अवसरों पर विभिन्न क्षेत्रीय विषयों पर आधारित बनाई जाती है।

मेवाड़ शैली : लाल, केसरिया रंगों की पृष्ठशैली में विपरीत रंगों का प्रयोग इस शैली की प्रमुख विशेषता है।

बीकानेर शैली : इस शैली का विकास जहांगीर एवं शाहजहां शैली से हुआ। इस शैली के प्रमुख चित्रकार रूकनुद्दीन थे।

मांडू शैली : इस चित्रकला में मुख मुद्रा की अभिव्यक्ति तथा आकृतियों में विभिन्नता झलकती है। इस शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि प्राकृतिक दृश्यों से युक्त है। साथ ही इस शैली के चित्रों पर फारसी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

किशनगढ़ शैली : इस शैली का केंद्रबिंदु मुख्यतः वल्लभ सम्प्रदाय रहा था। इस शैली में राधाकृष्ण तथा कृष्णलीला सम्बंधी चित्रों का निर्माण प्रमुख रूप से किया गया।

कोटा–बूंदी शैली : इस शैली के प्रमुख संरक्षक उम्मेद सिंह थे। इस शैली की प्रमुख विशेषताओं में महल की दीवारों पर संरक्षित चित्रों में पेड़, पौधों, चट्टानों तथा वन्य जीवों के सुंदर दृश्य हैं। कोटा शैली की नितांत नवीन संविधा में हरे रंग की पृष्ठभूमि पर गुलाबी तथा भूरे रंगों का समन्वय दिखाई देता है।

बसौली शैली : इस शैली में एकरंगी पृष्ठभूमि वाले चित्रों की प्रधानता थी, जिसमें मुगल, राजस्थानी, स्वदेशी शैलियों का सुंदर समन्वय किया गया है। इस शैली के चित्रों में आभूषणों से युक्त मानववृत्तियां, जिनमें आभूषण पारदर्शी प्रतीत होते हैं, जैसे चित्रों का चित्रण किया गया है।

कांगड़ा शैली : कचोर राजवंश के राजा संसारचंद्र के शासनकाल में विकसित इस शैली की प्रमुखता पौराणिक कथाओं एवं रीतिकालीन नायक नायिकाओं के चित्रण की रही है।

जम्मू शैली : इस शैली के प्रमुख संरक्षक राजा रणजीत देव थे। इस शैली के चित्रकारों ने अपने चित्रों में अपने संरक्षक राजाओं का भव्य चित्रण किया गया है।

पट चित्र : पौराणिक घटनाओं से सम्बंधित कपड़ों पर बने चित्रों को पट चित्र कहा जाता है।

बिलासपुर शैली : यह शैली बसौली चित्रकला से काफी मिलती जुलती है। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि प्राकृतिक दृश्यों का जीवंत रूप में प्रदर्शन।

मण्डी चित्रकला शैली : इस शैली में स्त्री पात्रों का अंकन प्रमुख रूप से किया गया है। चौड़ा ललाट एवं नुकीली नाक इस शैली की प्रमुख विशेषता है।

कुल्लू शैली : इस शैली के चित्रों में मानवाकृतियों का मुक्त चित्रण किया गया है। इस शैली में रामायण की एक पूरी श्रंखला का चित्रण किया गया है।

Develop India Group

भारतीय नृत्य शैलियां

भारत में नृत्य की जड़ें प्राचीन परंपराओं से पाई जाती है। इस विशाल उपमहाद्वीप में नृत्यों की विभिन्न विधाओं ने जन्म लिया है। प्रत्येक विधा ने विशिष्ट समय व वातावरण के प्रभाव से आकार लिया है। देश में शास्त्रीय नृत्य की कई विधाएं हैं, जिनमें से प्रत्येक का सम्बंध देश के विभिन्न भागों से है। प्रत्येक विधा किसी विशिष्ट क्षेत्र अथवा व्यक्तियों के समूह के लोकाचार का प्रतिनिधित्व करती है।

भरतनाट्यम

भरतनाट्यम, भारत के प्रसिद्ध नृत्यों में से एक है तथा इसका सम्बंध दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य से है। यह नाम भरत शब्द से लिया गया तथा इसका सम्बंध नृत्यशास्त्र से है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा, हिंदु देवकुल के महान त्रिदेवों में से प्रथम, नाट्य शास्त्र अथवा नृत्य विज्ञान हैं। भरतनाट्यम में नृत्य के तीन मूलभूत तत्वों को कुशलतापूर्वक शामिल किया गया है। ये हैं भाव अथवा मन :स्थिति, राग अथवा संगीत और स्वरमार्धुय और ताल अथवा काल समंजन। भरतनाट्यम की तकनीक में, हाथ, पैर, मुख, व शरीर संचालन के समन्वयन के 64 सिद्धांत हैं, जिनका निष्पादन नृत्य पाठ्यक्रम के साथ किया जाता है। इस नृत्य शैली की खास विशेषताएं, नायक–नायिका प्रसंग पर आधारित पद्म अथवा कविताएं हैं। इन प्रेमगीतों की रफ्तार धीमी है और निष्पादन के प्रत्येक भाग को प्रेम के विशिष्ट भाव पर निश्चित रूप दिया जाता है।

कथकली

कथकली मालाबार, कोचीन, और ट्रावनकोर के आस पास प्रचलित सुप्रसिद्ध शास्त्रीय रंगकला है। 17वीं शताब्दी में कोट्टारक्करा तंपुरान (राजा) ने जिस रामनाट्टम का आविष्कार किया था, उसी का विकसित रूप है कथकली। यह रंगकला नृत्यनाट्य कला का सुंदरतम रूप है।

कथकली का अर्थ होता है *'एक कथा का नाटक या एक नृत्य नाटिका'*। कथा का अर्थ है *'कहानी'*, यहां अभिनेता रामायण और महाभारत के महाग्रंथों और पुराणों से लिए गए चरित्रों को अभिनय करते हैं। यह अत्यंत रंग बिरंगा नृत्य है। इसके नर्तक उभरे हुए परिधानों, फूलदार दुपट्टों, आभूषणों और मुकुट से सजे होते हैं। वे उन विभिन्न भूमिकाओं को चित्रित करने के लिए सांकेतिक रूप से विशिष्ट प्रकार का रूप धरते हैं, जो वैयक्तिक चरित्र के बजाए उस चरित्र के अधिक नजदीक दिखाई देते हैं।

कथकली नृत्य की विभिन्न विशेषताएं, मानव, देवता और दैत्य आदि को शानदार वेशभूषा और परिधानों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। इस नृत्य का सबसे अधिक प्रभावशाली भाग यह है कि इसके चरित्र कभी बोलते नहीं हैं, केवल उनके हाथों के हाव भाव की उच्च विकसित भाषा तथा चेहरे की अभिव्यक्ति होती है जो इस नाटिका के पाठ्य को दर्शकों के सामने प्रदर्शित करती है। पारम्परिक रीति रिवाज जैसे थेयाम, मुडियाट्टम और केरल की मार्शल कलाएं नृत्य को वर्तमान स्वरूप में लाने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

कथक

कथक राजस्थान और उत्तर भारत की नृत्य शैली है। यह बहुत प्राचीन शैली है, क्योंकि महाभारत में भी कथक का वर्णन है। मध्य काल में इसका सम्बन्ध कृष्ण कथा और नृत्य से था। मुगलकाल में यह दरबार में भी किया जाने लगा। अद्यतन काल में बिरजू महाराज इसके बड़े व्याख्याता रहे हैं। हिन्दी फिल्मों में अधिकांश नृत्य इसी शैली पर आधारित होते हैं। कथक का नृत्य रूप 100 से अधिक घुंघरुओं को पैरों में बांध कर तालबद्ध पदचाप, विहंगम चक्कर द्वारा पहचाना जाता है और हिन्दू धार्मिक कथाओं के अलावा पर्शियन और उर्दू कविता से ली गई विषयवस्तुओं का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया जाता है। कथक का जन्म उत्तर में हुआ, किन्तु पर्शियन और मुस्लिम प्रभाव से यह मंदिर की रीति से दरबारी मनोरंजन तक पहुंच

Develop India Group

गया।

कथक की शैली का जन्म ब्राह्मण पुजारियों द्वारा हिन्दुओं की पारम्परिक पुनः गणना में निहित है, जिन्हें कथिक कहते थे, जो नाटकीय अंदाज में हाव भावों का उपयोग करते थे। क्रमशः इसमें कथा कहने की शैली और अधिक विकसित हुई तथा एक नृत्य रूप बन गया।

ओडिसी

ओडिसी को पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर सबसे पुराने जीवित नृत्य रूपों में से एक माना जाता है। उड़ीसा के पारम्परिक नृत्य, ओडिसी का जन्म मंदिर में नृत्य करने वाली देवदासियों के नृत्य से हुआ था। ओडिसी उडीसा की एक शास्त्रीय नृत्य शैली है। अद्यतन काल में गुरु केलुचरण महापात्र ने इसका पुनर्विस्तार किया। ओडिसी नृत्य का उल्लेख शिला लेखों में भी मिलता है। इसे ब्रहदेश्वर मंदिर के शिला लेखों में दर्शाया गया है, साथ ही कोणार्क के सूर्य मंदिर के केन्द्रीय कक्ष में इसका उल्लेख मिलता है। वर्ष 1950 में इस पूरे नृत्य रूप को एक नया रूप दिया गया, जिसके लिए अभिनय चंद्रिका और मंदिरों में पाए गए तराशे हुए नृत्य की मुद्राएं धन्यवाद के पात्र हैं।

किसी अन्य भारतीय शास्त्रीय नृत्य रूप के समान ओडिसी के दो प्रमुख पक्ष हैं – नृत्य या गैर निरुपण नृत्य, जहां अंतरिक्ष और समय में शरीर की भंगिमाओं का उपयोग करते हुए सजावटी पैटर्न सृजित किए जाते हैं। इसका एक अन्य रूप अभिनय है, जिसे सांकेतिक हाथ के हाव भाव और चेहरे की अभिव्यक्तियों को कहानी या विषय वस्तु समझाने में उपयोग किया जाता है। इसमें त्रिभंग पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, जिसका अर्थ है शरीर को तीन भागों में बांटना, सिर, शरीर और पैर मुद्राएं और अभिव्यक्तियां भरत नाट्यम के समान होती है। ओडिसी नृत्य में विष्णु, भगवान कृष्ण के आठवें अवतार के बारे में कथाएं बताई जाती हैं। यह एक कोमल, कवितामय शास्त्री नृत्य है जिसमें उड़ीसा के परिवेश तथा इसके सर्वाधिक लोकप्रिय देवता, भगवान जगन्नाथ की महिमा का गान किया जाता है। ओडिसी नृत्य भगवान कृष्ण के प्रति समर्पित है और इसके छंद संस्कृत नाटक *'गीत गोविंदम'* से लिए गए हैं, जिन्हें प्रेम और भगवान के प्रति समर्पण को प्रदर्शित करने में उपयोग किया जाता है।

मणिपुरी

पूर्वोत्तर के मणिपुर क्षेत्र से आया शास्त्रीय नृत्य मणिपुरी नृत्य कहलाता है। मणिपुरी नृत्य भारत के अन्य नृत्य रूपों से भिन्न है। इसमें शरीर धीमी गति से चलता है। सांकेतिक भव्यता और मनमोहक गति से भुजाएं अंगुलियों तक प्रवाहित होती है। यह नृत्य 18वीं शताब्दी में वैष्णव सम्प्रदाय के साथ विकसित हुआ, जो इसके शुरुआती रीति–रिवाज और जादुई नृत्य रूपों में से बना है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा गीत गोविंदम की रचनाओं से आई विषय वस्तुएं इसमें प्रमुख रूप से उपयोग की जाती हैं।

मणिपुर की मेइटी जनजाति की दंत कथाओं के अनुसार जब ईश्वर ने पृथ्वी का सृजन किया, तब यह एक पिंड के समान थी। सात लैनूराह ने इस नव–निर्मित गोलार्ध पर नृत्य किया, अपने पैरों से इसे मजबूत और चिकना बनाने के लिए इसे कोमलता से दबाया। यह मेइटी जागोई का उद्भव है। आज के समय तक जब मणिपुरी लोग नृत्य करते हैं वे कदम तेजी से नहीं रखते, बल्कि अपने पैरों को भूमि पर कोमलता और मृदुता के साथ रखते हैं। मूल भ्रांति और कहानियां अभी भी मेइटी के पुजारियों या माइबिस द्वारा माइबी के रूप में सुनाई जाती है जो मणिपुरी की जड़ है।

मोहिनीअट्टम

मोहिनीअट्टम केरल की महिलाओं द्वारा किया जाने वाला अर्ध–शास्त्रीय नृत्य है जो कथकली से अधिक पुराना माना जाता है। साहित्यिक रूप से नृत्य के बीच मुख्य माना जाने वाला जादुई मोहिनीअटट्म केरल के मंदिरों में प्रमुखतः किया जाता

Develop India Group

था। यह देवदासी नृत्य का विरासत उत्तराधिकारी भी माना जाता है जैसे कि भरत नाट्यम, कुचीपुडी और ओडिसी। इस शब्द *'मोहिनी'* का अर्थ है एक ऐसी महिला जो देखने वालों का मन मोह ले या उनमें इच्छा उत्पन्न करें। यह भगवान विष्णु की एक जानी मानी कहानी है कि जब उन्होंने दुग्ध सागर के मंथन के दौरान लोगों को आकर्षित करने के लिए मोहिनी का रूप धारण किया था और भामासुर के विनाश की कहानी भी इसके साथ जुड़ी हुई है। अतः यह सोचा गया है कि वैष्णव भक्तों ने इस नृत्य रूप को मोहिनीअट्टम का नाम दिया।

मोहिनीअट्टम का प्रथम संदर्भ माजामंगलम नारायण नब्बूदिरी द्वारा संकल्पित *'व्यवहार माला'* में पाया जाता है जो 16वीं शताब्दी में रचा गया। 19वीं शताब्दी में स्वाति तिरुनाल, पूर्व त्रावणकोर के राजा थे, जिन्होंने इस कला रूप को प्रोत्साहन और स्थिरीकरण देने के लिए काफी प्रयास किए। स्वाति के पश्चात् यद्यपि इस कला रूप में गिरावट आई। किसी प्रकार यह कुछ प्रांतीय जमींदारों और उच्च वर्गीय लोगों के भोगवादी जीवन की संतुष्टि के लिए कामवासना तक गिर गया। कवि वालाठोल ने इसे एक बार फिर नया जीवन दिया और इसे केरल कला मंडलम के माध्यम से एक आधुनिक स्थान प्रदान किया, जिसकी स्थापना उन्होंने 1903 ई. में की थी। कलामंडलम कल्याणीमा, कलामंडलम की प्रथम नृत्य शिक्षिका थीं जो इस प्राचीन कला रूप को एक नया जीवन देने में सफल रहीं। उनके साथ कृष्णा पणीकर, माधवी अम्मा और चिन्नम्मू अम्मा ने इस लुप्त होती परम्परा की अंतिम कडियां जोड़ी जो कलामंडल के अनुशासन में पोषित अन्य आकांक्षी थीं।

मोहिनीअट्टम की विषय वस्तु प्रेम तथा भगवान के प्रति समर्पण है। विष्णु या कृष्ण इसमें अधिकांशत : नायक होते हैं। इसके दर्शक उनकी अदृश्य उपस्थिति को देख सकते हैं, जब नायिका या महिला अपने सपनों और आकांक्षाओं का विवरण गोलाकार गतियों, कोमल पद तालों और गहरी अभिव्यक्ति के माध्यम से देती है। नृत्यांगना धीमी और मध्यम गति में अभिनय के लिए पर्याप्त स्थान बनाने में सक्षम होती है और भाव प्रकट कर पाती है। इस रूप में यह नृत्य भरत नाट्यम के समान लगता है। इसकी गतिविधियां ओडिसी के समान भव्य और इसके परिधान सादे तथा आकर्षक होते हैं। यह अनिवार्यतः एकल नृत्य है किन्तु वर्तमान समय में इसे समूहों में भी किया जाता है। मोहिनीअट्टम की परम्परा भरत नाट्यम के काफी करीब चलती है। चोल केतु के साथ आरम्भ करते हुए नृत्यांगना जाठीवरम, वरनम, पदम और तिलाना क्रम से करती है। वरनम में शुद्ध और अभिव्यक्ति वाला नृत्य किया जाता है, जबकि पदम में नृत्यांगना की अभिनय कला की प्रतिभा दिखाई देती है, जबकि तिलाना में उसकी तकनीकी कलाकारी का प्रदर्शन होता है। मूलभूत नृत्य ताल चार प्रकार के होते हैं – तगानम, जगानम, धगानम और सामीश्रम। ये नाम वैट्टारी नामक वर्गीकरण से उत्पन्न हुए हैं। मोहिनीअट्टम में सहज लगने वाली साज सज्जा और सरल वेशभूषा धारण की जाती है। नृत्यांगना को केरल की सफेद और सुनहरी किनारी वाली सुंदर कासावू साड़ी में सजाया जाता है।

कुचीपुडी

कुचीपुडी आंध्र प्रदेश की एक स्वदेशी नृत्य शैली है जिसने इसी नाम के गांव में जन्म लिया और विकसित हुई। इसका मूल नाम कुचेलापुरी या कुचेलापुरम था, जो कृष्णा जिले का एक कस्बा है। मूल रूप से यह तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में उत्पन्न हुई। कुचीपुडी कला का जन्म अधिकांश भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के समान धर्म के साथ जुड़ा हुआ है। एक लम्बे समय से यह कला केवल मंदिरों में और वह भी आंध्र प्रदेश के कुछ मंदिरों में वार्षिक उत्सव के अवसर पर प्रदर्शित की जाती थी। परम्परा के अनुसार कुचीपुडी नृत्य मूलतः केवल पुरुषों द्वारा किया जाता था और वह भी केवल ब्राह्मण समुदाय के पुरुषों द्वारा। ये ब्राह्मण परिवार कुचीपुडी के भागवतथालू कहलाते थे। कुचीपुडी के भागवतथालू ब्राह्मणों का पहला समूह 1502 ई. में निर्मित किया गया था। उनके कार्यक्रम देवताओं को समर्पित किए जाते थे तथा उन्होंने अपने समूहों में महिलाओं को प्रवेश नहीं दिया।

Develop India Group

महिला नृत्यांगनाओं के शोषण के कारण नृत्य कला के ह्रास के युग में एक सिद्ध पुरुष सिद्धेंद्र योगी ने नृत्य को पुनः परिभाषित किया। कुचीपुडी के 15 ब्राह्मण परिवारों ने 5 शताब्दियों से अधिक समय तक परम्परा को आगे बढ़ाया है। प्रतिष्ठित गुरु जैसे वेदांतम लक्ष्मी नारायण, चिंता कृष्णा मूर्ति और तादेपल्ली पेराया ने महिलाओं को इसमें शामिल कर नृत्य को और समृद्ध बनाया है। डॉ. वेमापति चिन्ना सत्यम ने इसमें कई नृत्य नाटिकाओं को जोड़ा और कई एकल प्रदर्शनों की नृत्य संरचना तैयार की और इस प्रकार नृत्य रूप के क्षितिज को व्यापक बनाया। यह परम्परा तब से महान बनी हुई है जब पुरुष ही महिलाओं का अभिनय करते थे और अब महिलाएं पुरुषों का अभिनय करने लगी हैं।

कुचीपुडी कला एक ऐसे नृत्य नाटिका के रूप में आशयित की गई थी, जिसके लिए चरित्र का एक सैट आवश्यक था, जो केवल एक नर्तक द्वारा किया जाने वाला नृत्य नहीं था जो आज के समय में प्रचलित है। इस नृत्य नाटिका को कभी कभी अट्टा भागवतम कहते हैं। इसके नाटक तेलुगु भाषा में लिखे जाते हैं और पारम्परिक रूप से सभी भूमिकाएं केवल पुरुषों द्वारा निभाई जाती है। कुचीपुडी नाटक खुले और अभिनय के लिए तैयार मंचों पर खेले जाते हैं। इसके प्रस्तुतिकरण कुछ पारम्परिक रीति के साथ शुरू होते हैं और फिर दर्शकों को पूरा दृश्य प्रदर्शित किया जाता है।

इस कला की साज सज्जा और वेशभूषा इसकी विशेषता है और इसके महिला चरित्र कई आभूषण पहनते हैं जैसे कि रकुडी, चंद्र वानिकी, अडाभासा और कसिनासारा तथा फूलों और आभूषणों से सज्जित लंबी वेणी। कुचीपुडी का संगीत शास्त्रीय कर्नाटक संगीत होता है। मृदंग, वायलिन और एक क्लेरीनेट इसमें बजाए जाने वाले सामान्य संगीत वाद्य हैं। आज के समय में कुचीपुडी में भी भरत नाट्यम के समान अनेक परिवर्तन हो गए हैं। वर्तमान समय के नर्तक और नृत्यांगनाएं कुचीपुडी शैली में उन्नत प्रशिक्षण लेते हैं और अपनी वैयक्तिक शैली में इस कला का प्रदर्शन करते हैं। इसमें वर्तमान समय में केवल दो मेलम या पुरुष प्रदर्शकों के व्यावसायिक दल हैं। इसमें अधिकांश नृत्य महिलाएं करती हैं। वर्तमान समय के प्रदर्शन में कुचीपुडी नृत्य नाटिका से घट कर नृत्य तक रह गया हैं। अब यह जटिल रंग मंच अभ्यास के स्थान पर नियमित मंच प्रदर्शन बन गया है।

कुटियाट्टम

कुटियाट्टम केरल के शास्त्रीय रंग मंच का अद्वितीय रूप है जो अत्यंत मनमोहक है। यह 2000 वर्ष पहले के समय से किया जाता था। यह भारत का सबसे पुराना रंग मंच है, जिसे निरंतर प्रदर्शित किया जाता है। राजा कुल शेखर वर्मन ने 10वीं शताब्दी में कुटियाट्टम में सुधार किया और इसको संस्कृत में प्रदर्शित करने की परम्परा को जारी रखा। प्राकृत भाषा और मलयालम इसे प्राचीन रूपों में जीवित रखे हुए है। इस भण्डार में भास, हर्ष और महेन्द्र विक्रम पल्लव द्वारा लिखे गए नाटक शामिल हैं।

पारम्परिक रूप से चक्यार जाति के सदस्य इसमें अभिनय करते हैं और यह इस समूह को ही समर्पित है जो शताब्दियों से कुटियाट्टम के संरक्षण का उत्तरदायी है। ड्रमरों की उप–जाति नाम्बियार को इस रंग मंच के साथ निझावू के अभिनेता के रूप में जोड़ा जाता है (मटके के आकार का एक बड़ा ड्रम कुटियाट्टम की विशेषता है)। नाम्बियार समुदाय की महिलाएं इसमें महिला चरित्रों का अभिनय करती है और बेल धातु की घंटियां बजती है, जबकि अन्य समुदायों के लोग इस नाट्य कला का अध्ययन करते हैं और मंच पर प्रदर्शन में भाग ले सकते हैं, किन्तु वे मंदिरों में प्रदर्शन नहीं करते। प्रदर्शन आम तौर पर कई दिनों तक चलते हैं। इनमें से कुछ चरित्रों के परिचय और उनके जीवन की घटनाओं को समर्पित किए जाते हैं। इस पूरे प्रदर्शन में शुरुआत से अंत तक इसे अंतिम दिन तक चलाया जाता है, जबकि इसका अनिवार्य रूप से यह अर्थ नहीं है कि नाटक के संपूर्ण लिखित पाठ को अभिनय में ढाला जाए। कुटियाट्टम की एक शाम रात 9 बजे शुरू होती है जब मंदिर के मुख्य गर्भ गृह के रीति रिवाज पूरे हो जाते हैं तथा यह अर्धरात्रि तक, कभी–कभार सुबह 3 बजे तक चलता

Develop India Group